८

आसोज शुक्ल १४, मंगलवार, २०-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार, गाथा-२९४ से २९६,
३०५, ३२५, ३३३, ३४६, ३५६, ३९२, ३९९, ४००, प्रवचन - २५

श्रावकाचार तारणस्वामी रचित है। इसमें मिथ्यात्व और समकित का ... सुख-दु:ख का कारण बताते हैं। २९६। २९४, २९५ बाद में लेंगे।

मिथ्यात्वं परमं दु:खं, सम्यक्तं परम सुखं।
तत्र मिथ्यामतं तत्त्वं, शुद्ध सम्यक्त सार्धयं॥२९६॥

यह श्रावक की मूल बात है। मिथ्यादर्शन परम दु:ख का कारण है। समझ में आया? निर्धनता, प्रतिकूलता, नरगति आदि दु:ख का कारण नहीं है। मिथ्याश्रद्धा, वास्तविक तत्त्व का भान नहीं है और विरुद्ध मान्यता करनेवाले का विश्वास करके विरुद्ध मान्यता करना। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की खबर नहीं, क्या देव-गुरु-शास्त्र हैं, क्या देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं, और विपरीत मानना। आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्ञायक है, उसको रागसहित अन्दर मानना पुण्य की क्रिया से अपने में धर्म मानना, पाप के परिणाम से अपने में मजा मानना, पर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, पर की रक्षा कर सकता हूँ, ऐसा मानना—ऐसा माननेवाले का विश्वास करना, वह सब मिथ्यात्वभाव है। ... मिथ्यात्व में तो। २९४-२८५ बाद में लेंगे। समझ में आया? है न? पण्डितजी!

'**मिथ्यात्वं परमं दु:खं**' मिथ्या-विपरीत मान्यता, उल्टी श्रद्धा; जानपना भले थोड़ा हो, परन्तु उल्टी श्रद्धा महान पाप है। जानपना ग्यारह अंग नौ पूर्व का पढ़ ले। जैनशास्त्र, हों! दूसरे बोध की बात ही नहीं है, वह सब तो अज्ञान है। दूसरा जानपना करना, वह सब तो अज्ञान, अज्ञान और अज्ञान है। शास्त्र का पढ़ना, ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़ा, परन्तु दृष्टि सम्यक् किये बिना उसका ज्ञान भी अज्ञान कहने में आता है। समझ में आया?

'**मिथ्यात्वं परमं दुःखं**' विपरीत मान्यता निगोद का कारण है। परम दुःख की व्याख्या वह है। परम दुःख समझे ? निगोद के अलावा ऐसा दुःख नहीं है। निगोद समझे ? आलू, काई, एक शरीर में अनन्त जीव। कहते हैं मिथ्या दृष्टि जैसा कोई दुःख नहीं है। मिथ्यादृष्टि ग्यारह अंग पढ़ लेवे, नौ पूर्व पढ़े, जगत की विचक्षणता, जगत का सब बोध कर ले, फिर भी मिथ्यादृष्टिपना नहीं छोड़े तो मिथ्यात्व के कारण निगोद में महादुःख पायेगा। समझ में आया ? ... निगोदं गच्छई। मिथ्याश्रद्धा क्या है, सम्यग्दर्शन क्या है—यह मालूम नहीं.. समझे ? और (माने कि) हम जैन हैं।

मुमुक्षु : परन्तु जैन में जन्मा हो, वह मिथ्यादृष्टि थोड़े होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन में धूल में जन्मा है। जैन कहाँ है ? जैन में जन्मा। बोरी पर लिखा केसर, तो क्या केसर की बोरी हो जाती है ? ऊपर तो वारदान है। जैन नाम दिया वारदान का, हम जैन हैं। उसमें क्या आया ? अनन्त बार ऐसा ब्रह्मचर्य भी अनन्त बार पाला, दया भी अनन्त बार (पाली), भाव क्रिया, हों! दया का भाव। छह काय की (दया) पाल नहीं सकता। ऐसा अनन्त बार व्रत, नियम किया। अपने आ गया है। उग्र तपं व्रतं। आ गया न ? वह तो अनन्त बार किया। परन्तु मिथ्याश्रद्धा जो अनन्त काल में एक सेकेण्ड ... गयी नहीं। तो वह मिथ्याश्रद्धा क्या है, सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं, खबर नहीं। सबका समान धर्म। समझ में आया ? हमारा भी समान है, आपका भी समान है। ... सब ... करते हैं।

ऐसा मिथ्यात्वभाव परम दुःख अर्थात् निगोद का कारण है। समझ में आया ? पढ़ा-लिखा उसका सब पानी में जाएगा। मिथ्याश्रद्धा रखनेवाला-पर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, पर को सुख-दुःख हम दे सकते हैं, पर से हमारा कल्याण (हो जाएगा), अथवा पर का आशीर्वाद मिले तो हमारा कल्याण हो जाए, ऐसी चीज़ है नहीं। समझ में आया ? मिथ्यादर्शन परमदुःख का कारण है। निगोद का कारण है। कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं, एक वस्त्र का धागा रखकर हम मुनि हैं—ऐसा माने, मनावे, मानने को सम्मत हो, निगोदं गच्छई। क्योंकि वास्तविक सर्वज्ञ परमात्मा ने जो तत्त्व कहा, उसमें एक भी फेरफार हो (तो) सारे नौ तत्त्व बिगड़ जाते हैं। समझ में आया ? ऐसी मान्यता करनेवाला निगोद में-निगोद में जाएगा।

'**सम्यक्तं परम सुखं।**' समकित के सिवाय कहीं सुख है नहीं। समकिती मोक्ष में जानेवाला है। अल्प काल में एक-दो भव में उसकी मुक्ति होगी। भले ज्ञान थोड़ा हो, क्रिया वर्तमान आचरण न हो, परन्तु सम्यग्दर्शन शुद्ध हो (तो भी उसकी मुक्ति होगी)। श्रेणिक राजा। कोई त्याग नहीं किया, व्रत, नियम था नहीं। सम्यग्दर्शन शुद्ध था तो उसके कारण एकाध भव में भविष्य में तीर्थंकर होंगे। समझ में आया? आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होंगे। वह सम्यग्दर्शन का प्रताप है। सेठी!

'**सम्यक्तं परम सुखं।**' कहो, समझ में आया? सम्यग्दर्शन.. ओहो! अन्तर आत्मा.. एक क्रिया राग का कर्ता मैं, पुण्य का, दया के भाव का कर्ता भी मैं नहीं तो पर की क्रिया का मैं कर्ता नहीं। ऐसा अपना शुद्ध चैतन्य में ज्ञाता-दृष्टा के अनुभव में प्रतीत (होना), ये सम्यग्दर्शन अनन्त आनन्द का-मोक्ष का कारण है। उसकी तो कीमत नहीं है अभी। बाह्य क्रिया करे, व्रत करे, क्रिया करे, तप करो (तो).. ओहो! बड़ा संयमी है। समझ में आया? और व्रतादि न हो तो कहे, त्याग है? कोई त्याग नहीं है! भगवान का मार्ग तो त्याग है। सुन तो सही। समझ में आया? सम्यग्दर्शन बिना का त्याग सब नरक, निगोद में ले जानेवाला है। अभिमान है उसको अन्दर में। स्वभाव का भान नहीं, हमने किया, ऐसा किया। कहते हैं, '**सम्यक्तं परम सुखं।**' समकित के सिवा कोई परमसुख का कारण जगत में है ही नहीं। समझ में आया?

'**तत्र मिथ्यामतं तत्त्वं**' इसलिए मिथ्याश्रद्धा, मिथ्या अभिप्राय छोड़कर '**शुद्ध सम्यक् सार्धयं।**' शुद्ध सम्यग्दर्शन से अपना साथ बनाना चाहिए। सम्यग्दर्शन का साथ बनाना चाहिए। सथवारा, सथवारा को क्या कहते हैं? साथीदार। चलता है न? साथीदार होता है। सम्यग्दर्शन को साथीदार बनाना। अपना शुद्ध ज्ञायक परमात्मा। दूसरा बोध हो, न हो; दुनिया माने, न माने; व्रत संयम हो या न हो, परन्तु सम्यग्दर्शन यथार्थ हुआ, अल्प काल में वह सम्यग्दर्शन के प्रताप से केवलज्ञान और मोक्ष पायेगा। कहो, समझ में आया? अब, २९४। वह २९६ के पहले थी। वह पहले आ गया था। पहले आठ व्याख्यान हुआ न? उसमें यह व्याख्यान आ गया था। पहले सोलह व्याख्यान हुए, उसमें आठ गाथा का आ गया। इस गाथा में नहीं आया, देखो! २९४।

मिथ्या संग न कर्तव्यं, मिथ्या वासना वासितं।
दूरेहि त्यजंति मिथ्यात्वं, देसो त्याग च कर्तव्यं॥२९४॥

विपरीत मान्यता, एक कण भी सूक्ष्म मिथ्यात्व। टोडरमलजी ने सातवें अध्याय में बहुत लिया है। जैन दिगम्बर में जन्मा, फिर भी सूक्ष्म भी मिथ्यात्व रहता है। व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है, निश्चयाभासी व्यवहार विकल्प आता है, उसको जानते नहीं, मानते नहीं। सातवें अध्याय में बहुत अधिकार लिया है। कहते हैं कि मिथ्यात्व का संग न करना चाहिए। मिथ्यादृष्टि का संग नहीं करना चाहिए और मिथ्यात्व का भाव नहीं करना चाहिए। जिसकी दृष्टि विपरीत है, उसका संग छोड़ना चाहिए। नहीं तो कुसंग से मिथ्यात्व की लकड़ी घुस जाएगी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य नुकसान क्या करे? परन्तु उसके संग को अच्छा जाने तो उसकी उल्टी प्रतीति हो जाएगी। समझ में आया? उल्टी प्रतीत करा देगा कि ऐसा है, ऐसा नहीं है और ऐसा है। अपनी मिथ्याश्रद्धा है दूसरे में (तो) बना दे। माने तो बना दे। माने बिना क्या? यहाँ लिखा है न, देखो! '**मिथ्या वासना वासितं**' मिथ्यात्व की वासना-गन्ध थोड़ी बैठी हो। उल्टी श्रद्धा-एक विकल्प से धर्म होता हे, निमित्त से कार्य होता है, मैं पर का कार्य कर सकता हूँ, कोई भी, थोड़ी भी सूक्ष्म। समझ में आया? सेठी!

'**दूरेहि त्यजंति मिथ्यात्वं**' छोड़ दे, दूर छोड़ दे। '**देश इत्यादि**' देश आदि का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्षेत्र हो तो छोड़ देना चाहिए। उल्टा संग हो, जिसमें मिथ्यात्व का पोषण मिले, मिथ्यात्व की प्ररूपणा-कथन मिले। सच्चे तत्त्व का भान नहीं हो, ऐसा क्षेत्र छोड़ देना चाहिए।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मेरे मन में आया था, तुम बोले। विमलचन्दजी! वहाँ साधन नहीं था (तो) छोड़ दिया। नहीं। विमलचन्दजी को देखा है न? अभी थे। बहुत वांचन, उसका दिमाग बहुत है। छोटी उम्र है। उम्र तो २८ वर्ष की है, परन्तु दिमाग.. शास्त्र का वांचन, हाँ! धवल, जयधवल, महाधवल, समयसार, प्रवचनसार आदि सब शास्त्र। दूसरी

कोई बात नहीं।.. पढ़ा, और एक ओर शास्त्र। बस, दो के सिवा, कोई तीसरी बात ही नहीं। जवान है, अभी तो २८ साल की उम्र है। अभी जवान है। उसकी समझने की भावना, जानने की बहुत। और जयधवल, महाधवल का बहुत वांचन। याददाश्त भी बहुत। आस्थावाला आदमी, हों! आस्था। वहाँ ठीक नहीं था। ३५० वेतन मिलता था। वहाँ.. क्या कहते हैं? डालमियानगर। नहीं, नहीं।

मुमुक्षु : डालमियानगर जैन का गाँव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ भान था? जैन नाम धराये सम्प्रदाय का। जैन किसको कहना? जैन किसको कहना? जैन की दृष्टि क्या? जैन क्या कहते हैं? वीतराग का क्या मार्ग है? अभी सत्य उसे सुनने में आया नहीं, श्रद्धा कहाँ से लावे। समझ में आया? देखो! अपने आता है न? पद्मनन्दी पंचविंशति में आता है। पद्मनन्दी पंचविंशति में आया था। देश छोड़ देना। जिससे मिथ्यात्व-विपरीत प्ररूपणा (होती हो, वह) संग छोड़ दे। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य तो मूलाचार में वहाँ तक कहते हैं, मूलाचार में, कि जिसकी दृष्टि में विपरीतता है, (उसने) दूसरा जानपना चाहे जितना किया हो और व्रत, नियम भी हो, परन्तु जिसकी दृष्टि में विपरीतता है, (उसका) संग छोड़ देना। क्या करें? यह संग छोड़, शादी कर ले, स्त्री का संग कर। परन्तु ऐसा संग छोड़ दे। ऐसा पाठ लिया है। ऐई! पाठ है, गाथा है। है या नहीं? लाओ तो सही। सेठ सुने तो सही। डालचन्दजी मुश्किल से आये हैं। डालचन्दजी कहते थे, यहाँ से जाने का मन नहीं करता। समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। जिसकी दृष्टि-मान्यता में ठिकाना नहीं, समझ में आया? यहाँ भी सच्चा, ये भी सच्चा, वह भी सच्चा। व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं। निश्चय सम्यग्दर्शन तो एक ओर रहा। कहते हैं कि उसका संग नहीं करना। क्या करना? उसका संग छोड़ दे। कौन-सी गाथा है? दसवाँ अधिकार। ४९२ है। देखो! क्या कहते हैं? देखो! ... कहते हैं कि अभी आत्मा का भान नहीं है और रागादि के वश त्याग ले लेते हैं, मुनि हो जाते हैं, और उसकी श्रद्धा में विपरीत वासना पड़ी है, तो उसका संग नहीं करना।

वरं गणपवेसादो विवाहस्स पवेसणं।
विवाहे रागउपपत्तिगणो दोसाणागरो॥९६॥

कहते हैं कि '**वरं गणपवेसादो विवाहस्स पवेसणं**' कु-खोटा संग, साधु कुसंग, विपरीत मान्यता करानेवाला। समझ में आया? उसका संग छोड़ दे। उसके बदले '**विवाहस्स पवेसणं**' क्या कहा? ... क्या कहा? '**वरं गणपवेसादो विवाहस्स पवेसणं**' खोटे संग में रहने के बदले '**वरं विवाहस्स पवेसणं**' स्त्री से शादी करना प्रधान है। क्योंकि स्त्री के साथ शादी करने में तो चारित्र का राग का ही दोष आयेगा, मिथ्यात्व का दोष नहीं आयेगा। आहाहा! समझ में आया? दुनिया को कठिन लगता है वर्तमान में। बाह्य त्याग... मूल चीज़ क्या है, उसका भान नहीं। देखो पाठ।

'**यति अन्त समय में यदि गण में प्रवेश करेंगे तो शिष्यादिक में मोह उत्पन्न होगा तथा मुनिकुल में मोह उत्पन्न होने के लिये कारणभूत ऐसे पार्श्वस्थादिक पाँच मुनिराज को सम्पर्क होगा। उनके सम्पर्क की अपेक्षा से विवाह में प्रवेश करना अर्थात् गृह में प्रवेश करना अधिक अच्छा है। क्योंकि विवाह में स्त्री आदिक परिग्रहों का ग्रहण होता है और उससे रागोत्पत्ति होती है। परन्तु गण तो सर्व दोषों का आकार हैं।**' उल्टे संग की श्रद्धा के परिचय में रहना, '**उससे मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, राग-द्वेषादिक उत्पन्न होते हैं। विवाह में मिथ्यात्व नहीं होगा...**' बड़ी कठिन बात।

मुनि सन्त भावलिंगी छट्ठे-सातवें गुणस्थान में (झूलते) आचार्य। जो, मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। तीसरे स्थान में नाम दिया। कहते हैं कि कुसंगी साधु, कुसंगी गृहस्थ, जिसकी वासना में मिथ्यात्व पड़ा है, तत्त्व का कुछ भान नहीं, (उसका संग करने से तो) विवाह में मिथ्यात्व नहीं है, मात्र चारित्रदोष होगा। ऐ.. प्रेमचन्दजी! देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य के मूलाचार की ९६ गाथा है। दुनिया को भान कहाँ है। समझ में आया? बाह्य त्याग, बाह्य ये, बाह्य वेष, ये क्रिया और वह क्रिया। उसकी प्रतीति और उसका भरोसा। तत्त्व की क्या विपरीतता है, भान नहीं है उसको और भान नहीं है उसको। डालचन्दजी!

'**विवाहे रागउपपत्तिगणो दोसाणागरो**' उल्टी श्रद्धावाले संग में तो अकेला पाप और मिथ्यात्व की खान है। मिथ्यात्व की खान है। उस दोष की कीमत नहीं, मिथ्यात्व के दोष की जगत को कीमत नहीं। निगोद का कारण है। यहाँ लिया न? '**मिथ्यात्वं परमं दुःखं।**' वह क्या चीज़ है, (उसकी) खबर नहीं। कहते हैं, '**देसो त्याग च कर्तव्यं।**' देस

छोड़ देना। अब थोड़ा आता है, थोड़ा कथन आता है।

मिथ्या दूरेहि वाचंति, मिथ्या संग न दिष्टिते।
मिथ्या माया कुटुम्बस्य, विरते सदा बुद्धे॥२९५॥

देखो! तारणस्वामी क्या कहते हैं? मिथ्यात्व से दूर से ही बचना चाहिए। '**दूरेहि वाचंते**' विपरीत श्रद्धा मनावे, प्ररूपे, कहे, दुनिया को मनावे, समझ में आया? ऐसे विपरीत मान्यता के शास्त्र लिखे, '**दूरेहि त्यजंति**' '**मिथ्या दूरेहि त्यजंति, मिथ्या संग न दिष्टिते।**' मिथ्यात्व का संग न देखना चाहिए अथवा परिचय नहीं करना। मिथ्यात्व, माया में फँसे कुटुम्ब का संग बुद्धिमान सदा बचावे। क्या है देखो! माता-पिता, भाई भी यदि ऐसे मिथ्या संस्कारवाले हो (तो) छोड़ देना। है भैया? देखो! २९५।

'**मिथ्या माया कुटुम्बस्य।**' अपना कुटुम्ब हो, स्त्री हो, पति हो, भाई हो, कुटुम्ब के सबसे प्रिय रिश्तेदार हो, लेकिन मिथ्याश्रद्धा का संस्कार पड़ा है और मिथ्याश्रद्धा की वासना दूसरे को बताते हैं कि ऐसा मार्ग है, ऐसा मार्ग है। छोड़ दे कुटुम्ब को, छोड़ दे पत्नी को, छोड़ दे पति को, भाई को छोड़ दे। कड़क है, कड़क। परन्तु सत्य है। महान मिथ्यात्व के पाप की तो तुझे कीमत नहीं है। समझ में आया? और यह राग घट गया, ब्रह्मचर्य पाला, त्याग किया, इन्द्रियदमन किया, संयम पाला, रात्रि को चोविहार करते हैं। वह सब तो क्रिया (है)। सुन तो सही। जहाँ मिथ्यात्व का सूक्ष्म भी शल्य पड़ा है, उसके कारण से परम्परा निगोद में जाएगा। ऐसे कुसंग का त्याग करना। आहाहा! यह बड़ा कठिन, भाई! सेठी! छोड़ दे कुसंग, ऐसे मिथ्या संग को। समझ में आया?

संग '**विरते सदा।**' समझे? मिथ्यात्व, माया में फँसे हुए कुटुम्ब के संग से बुद्धिमान सदा ही बचा रहे। देखो! सदा बचा रहे। तुम्हारे साथ धर्म की चर्चा नहीं। समझे? संसार की बात हो तो भले, धर्म की चर्चा नहीं। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि विपरीत है। वह संग .. करता नहीं। कुटुम्ब के साथ भी नहीं करना। आहाहा! यह तो घर में क्लेश करा दे, ऐसा है।

मुमुक्षु : ... जिम्मेदारी तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन-सी जिम्मेदारी? संसार की अलग बात है। लेकिन इस

प्रकार का परिचय मत करना। वह कहेगा, मैं तुमको बात कहता हूँ। वह बुद्धिवाला हो। नहीं, विपरीत श्रद्धा की बात हमें नहीं सुननी है। .. हो तो कहे, नहीं, हमें वह बात नहीं सुननी है। समझ में आया? वह कहते हैं। कुटुम्ब छोड़ देना, देश छोड़ देना, घर छोड़ देना। मिथ्यात्व तीव्र हो और अपनी बुद्धि अल्प हो और उसका विपरीत संस्कार पड़ा हो तो छोड़ देना उसको। चाहे कुटुम्ब हो तो भी छोड़ देना। ओहोहो! यह जीव मिथ्यात्व के संस्कार छोड़े नहीं और दूसरा छोड़ दे, तो क्या छोड़ा? धर्म छोड़ दिया है। समझ में आया? ३०५। ३०५ गाथा है न? जीवरक्षा शब्द है न, इसलिए अर्थ समझने के लिये लेते हैं। ३०५ है न?

जीवरक्षा षट् कायस्य, शंकये शुद्ध भावना।
श्रावको शुद्धदृष्टि च, फासू जलं फासू प्रवर्तते॥३०५॥

पहला प्रश्न तो यह है कि जीव की षट्काय की रक्षा शब्द जो पड़ा है न, वह जीव की रक्षा कर सकते हैं, ऐसे अर्थ में नहीं है। क्योंकि छह काय जीव तो पर है। पर की पर्याय रक्षा कर सके, तब तो दृष्टि मिथ्यात्व हो गयी, परद्रव्य की पर्याय मैं करता हूँ। समझ में आया? शब्द नहीं समझे तो उल्टा अर्थ करे, ऐसा है उसमें से। देखो! जीव रक्षा षट्काय की। षट्काय की जीव रक्षा करना लिखा है। वह तो शब्द है ऐसा। उसका अर्थ सम्यग्दृष्टि को छह काय जीव को दुःख पहुँचाने का भाव नहीं होता, उसको मारने का भाव नहीं होता। मरे या जीवित रहे, वह तो उसकी पर्याय की लायकात है। उसका आयुष्य हो तो नहीं मरे, नहीं हो तो मर जाए उसके कारण।

शुद्ध सम्यग्दर्शन की भावना करनेवाला श्रावक को शुद्ध दृष्टि रखनेवाला सम्यग्दर्शन शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा ऐसा भान है। छह काय के प्राणियों की रक्षा करना.. लम्बा-लम्बा लिखा है, भाई! छह काय की जीव रक्षा अथवा उसको नहीं मारना, ऐसा भाव उसको होता है। है शुभभाव। छह काय के जीव को नहीं मारना, है तो शुभभाव, धर्म नहीं। पुण्यभाव (है)। परन्तु उससे पर की रक्षा कर सकते हैं, ऐसा (है) नहीं। पर की रक्षा करना माने तो मिथ्यादृष्टि है। परद्रव्य की पर्याय का कर्ता होता है। समझ में आया? दोपहर को चलता है न? समझे बिना शास्त्र के अर्थ के अनर्थ करे, मिथ्यात्व पोषे, कहते हैं कि उसका संग छोड़ देना। देखो!

'**जीव रक्षा षट् कायस्य, शंकये शुद्ध भावना**' समझ में आया? '**श्रावको सुदृष्टि**'। श्रावक शुद्ध दृष्टि रखनेवाला। '**जलं फासू प्रवर्तते।**' प्रासुक जल काम में लेते हैं। काम में लेते हैं, अर्थात् क्या? ऐसा भाव आता है। कोई प्राणी को दुःख न हो, जल को दुःख न हो। प्रतिमाधारी की बात ली है। ऐसा भाव आता है। पर की क्रिया अपने से होती है, ऐसा वे मानते नहीं। परन्तु ऐसा भाव (आता है कि) कोई प्राणी को दुःख न हो। जल (जीवों की) रक्षा (के लिये) गालन.. छान के (उपयोग करते हैं)। क्रिया तो पर की है, हों! पर को आत्मा कर सकता नहीं। छानन-फानन का कर्ता हो तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? जैनधर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव समझना महा अलौकिक बात है। समझ में आया? छह काय की रक्षा का आ गया न? अब, ३२५। श्रावकों के आचार का सब वर्णन है, हों! सार-सार गाथा ली है।

देह हदेवलि देवं च, उवइट्ठो जिनवरंदेहं।
परमेष्ठी संजुत्तं, पूजं च शुद्ध सम्यक्त्वं॥३२५॥

सम्यग्दृष्टि, निश्चय से अपने देह में परमात्मा विराजता है, ऐसा मानता है। अपना भगवान देहदेवल में विराजता है। समझ में आया? अपना भगवान बाहर नहीं है। '**देह देवलि**' शरीररूपी मन्दिर में। आत्मारूपी देव। मैं ही परमेश्वर हूँ। अनन्त गुण का धाम, अनन्त आनन्द का कन्द, अनन्त केवलज्ञान की बेल को प्रगट करने का बीज। अनन्त-अनन्त केवलज्ञान.. केवलज्ञान.. केवलज्ञान सादि-अनन्त, ऐसी पर्याय अनन्त। केवलज्ञान एक समय की पर्याय है। दूसरे समय दूसरी होती है, तीसरे समय तीसरी होती है। केवलज्ञान, हों! वही केवलज्ञान नहीं रहता। समय-समय की केवलज्ञानपर्याय सादि-अनन्त (रहे), उसका बीज-पेट उसके आत्मा में है, आत्मा में है। मेरे में से केवलज्ञान की पर्याय बहे, ऐसा मैं (हूँ)। ऐसा देहदेवल में विराजमान भगवान, उसको अन्तर में अनुभव में प्रतीत करना, उसका नाम श्रावकाचार सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

पुनः, जिनेन्द्रों ने कहा है। देखो! '**उवइट्ठो जिनवरंदेहं**', '**उवइट्ठो जिनवरंदेहं।**' जिनेन्द्रों ने ऐसा कहा है। तीन लोक के नाथ परमेश्वर वीतराग, सौ इन्द्रों के पूजनीक। महावीर आदि अनन्त तीर्थंकरों, सीमन्धर आदि परमात्मा विराजमान। विद्यमान आता है। ममलपाहुड़ में आता है, ममलपाहुड़ में आता है। वर्तमान विद्यमान सीमन्धर भगवान आदि। ममलपाहुड़

में आता है। थोड़ा-थोड़ा सब देख लिया है। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा। एक महीने में १२ (ग्रन्थ) पढ़े। हमें तो कितने समय से होता है परन्तु... समझ में आया? '**उवइट्ठो जिनवरंदेहं**' जिनवरेन्द्रों ने यह उपदेश किया है। समझ में आया? बाकी बाह्य मन्दिर आदि व्यवहार है। पुण्यबन्ध का कारण है। भक्ति, पूजा, यात्रा पुण्यबन्ध का कारण है। वास्तविक देव यहाँ विराजता है। समझ में आया?

'**परमेष्ठी संजुत्तं।**' कैसा है? सिद्ध परमेष्ठी गुणों सहित है। मैं तो पूर्ण सिद्ध के जितने गुण हैं, उतने पूर्ण मेरे में है। ऐसा परमेष्ठी मैं हूँ। ऐसी सम्यग्दृष्टि की दृष्टि अपने स्वभाव पर होती है। ज्ञाता-दृष्टा मैं पूर्ण अनन्त आनन्द का कन्द हूँ। राग उत्पन्न होता है, वह मेरा कर्तव्य नहीं, मैं जाननेवाला हूँ। देह की क्रिया होती है, मैं जाननेवाला हूँ। ऐसा सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा को सिद्ध समान (मानता है)। उसकी भक्ति, पूजा शुद्ध सम्यग्दर्शन है।

भक्ति की व्याख्या क्या? अपने पूर्णानन्द शुद्ध स्वरूप में एकाग्रता से सम्यग्दर्शन करना, वह भक्ति है। वह निश्चयभक्ति है। समझ में आया? भगवान आदि की भक्ति साक्षात् तीर्थंकर हो तो भी वह भक्ति, भगवान के समवसरण में होती है, वह व्यवहार भक्ति है। सेठ! अपना भगवान वहाँ उनके पास नहीं है। ... यहाँ भगवान है। समवसरण में भी गणधर, भगवान की पूजा करते हैं। समझते हैं कि शुभभाव है। समझ में आया? श्रावक भी मणिरत्न से-दीपक से शुभभाव है। परद्रव्य का लक्ष्य है तो शुभभाव है। समझ में आया? मुक्ति का मार्ग नहीं। परन्तु बीच में व्यवहार आये बिना रहता नहीं। ये दो बात लोग करते हैं, देखो! यहाँ कहा।

'**पूजं**' अपना आत्मा पूज्य है, भक्ति करनेलायक है। अखण्डानन्द प्रभु एक विकल्प की गन्ध जिसमें नहीं, पूर्णानन्द परमेश्वर, जिसकी एक-एक गुण में अनन्ती शक्ति, ऐसा अनन्त गुण का प्रभु भगवान, जिसमें एक-एक गुण की अनन्ती पर्याय। समझ में आया? ऐसा अपना आत्मा निज कारण प्रभु, उसकी अन्तर्दृष्टि करना, एकाग्र होना, वही उसकी भक्ति और पूजा है। समझ में आया? वही भक्ति और पूजा संवर, निर्जरा का कारण है। समझ में आया? ...चन्दजी! बहुत कठिन (पड़ता है) लोगों को। ऐ.. सोनगढ़ (वाले ऐसा कहते हैं)। अरे! सोनगढ़ नहीं, यह तो भगवान की बात है, सुन तो सही।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अपने आप ही है अन्दर में। ... भाव आता है बराबर है। शुभभाव आता है, भक्ति, पूजा। इन्द्र नाचते हैं। शास्त्र में आता है। समझ में आया? ... विकल्प आया, उससे तीर्थंकर गोत्र बँधता है। विकल्प राग है। आहाहा! समझ में आया? षोडषकारण भावना है न? दर्शनविशुद्धि अकेले सम्यग्दर्शन की बात नहीं है। सम्यग्दर्शन से बन्ध पड़ता ही नहीं। क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प श्रद्धा, अनुभव और स्थिरता मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग से बन्ध होता ही नहीं। वह बात यहाँ कहते हैं। तारणस्वामी यह कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को षोडषकारण भावना का राग आता है, मिथ्यादृष्टि को नहीं। और आया वह राग पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

षोडषकारण भावना भायी है। किसने? जिसने। तथा अरिहन्त पद की भावना भायी है। वह तो एक ही बात है। '**अरहंत भावनं**' है न? दो बोल लिये हैं न? षोडष भावना भाये में '**अरहंत भावनं** (है)। वह तो तीर्थंकरपने का विकल्प आया। समकिती को आता है, यह बताना है। श्रद्धा में ठिकाना नहीं है, मिथ्यात्व (है) और हमें षोडषकारण भावना है। कहाँ से आयी तेरे? यह कहते हैं। समझ में आया? करो, धर्म प्रभावना और करो दुनिया में ऐसा। तीर्थंकर गोत्र बँध जाएगा। करो, वैयावृत्त्य और करो ऐसा। कहते हैं कि मूढ़ है। सम्यग्दर्शन बिना तेरा ऐसा विकल्प कभी तीन काल में आता नहीं। कहो, समझ में आया? तथा अरहन्त भावना भाये। लो, तीन पदार्थ स्वरूप। तीन अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रस्वरूप तीर्थंकर पूर्ण पाँच ज्ञानमय होते हैं। चौबीस में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पूर्ण हुआ। किसको? जिसने अपना सम्यग्दर्शन स्वभाव को प्रगट किया, उसमें जो विकल्प आया, तीर्थंकर गोत्र का बन्ध हुआ, वह तीर्थंकर भविष्य में होंगे। परन्तु वह विकल्प और प्रकृति से तीन दर्शन-ज्ञान-चारित्र पूर्ण होंगे, ऐसा नहीं। परन्तु उस जीव की ऐसी लायकात है कि अगले भव में दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपने स्वभाव के कारण पूर्ण करेगा। विकल्प आया, वह राग है; बन्ध पड़ा, वह जड़ प्रकृति है। समझ में आया?

कोई कहे कि देखो भैया! तीर्थंकर गोत्र बाँधा। तो तीर्थंकर गोत्र बँधा है, उससे

केवलज्ञान पायेगा। तीर्थंकर प्रकृति बन्ध से केवलज्ञान पाये तो वह तो बन्ध की प्रकृति जड़ हुई। और जिस भाव से बँधा, वह भाव तो आस्रव, उदयभाव है, राग है। उदयभाव से बन्ध पड़ता है। क्या क्षयोपशमभाव से बन्ध पड़ता है? पाँच भाव है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और पारिणामिक। उदयभाव से बन्ध पड़ता है। तीन काल—तीन लोक में कोई भी प्रकृति का नया बन्ध पड़ो, (वह) उदयभाव से (पड़ता) है। क्षयोपशम, उपशम, क्षायिक से बन्ध पड़ता नहीं। खबर नहीं और ऐसे ही लगा दे। देखो भैया! षोडशकारण भावना भायी, तीर्थंकर होगा। तीर्थंकर प्रकृति बँधी, उस कारण से केवलज्ञान पायेगा। तीर्थंकर प्रकृति तो अजीव है। और जो भाव था, वह तो उदयभाव राग है। राग और अजीव से केवलज्ञान होगा? ईश्वरचन्दजी! बड़ी कठिन बात।

मुमुक्षु : भावना भाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना भाते नहीं, आ जाती है। भावना भाते हैं, ऐसा कहा है। वह अर्थ अभी नहीं किया है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आता है, उसको भाते हैं—ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? और वह भी बात ऐसी है कि कोई तीर्थंकर का द्रव्य हो, उसको विकल्प आता है। अनादि की श्रेणी की स्थिति उसकी ऐसी है। सब ऐसा भाव करे, ऐसा होता ही नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। वह तो जो तीर्थंकर होनेवाला जीव है, उसके क्रम में ऐसी विकल्प की दशा चारित्र में बीच में आती है। ऐसी उसमें योग्यता पड़ी है। दूसरे में ऐसी योग्यता है नहीं। समझ में आया? चारित्रदोष की विपरीतता का वह कण है, परन्तु वह सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर होनेवाले हैं, ऐसी उसमें योग्यता है। उसको ऐसा विकल्प आता है। लेकिन जानते हैं कि आस्रव है, मुझे हितकर नहीं है। बन्ध पड़ा, वह मुझे हितकर नहीं है। परम्परा से मुक्ति होती है, ऐसा कथन शास्त्र में चले, परन्तु उसका अर्थ है कि उससे होता नहीं। ओहोहो! करो, षोडषकारण भावना, लगाओ ऐसा। आठ कर्म की पूजा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभभाव है, शुभभाव है, भैया! आया वह शुभभाव है, इतना

है बस। फिर समझना दूसरी चीज़ है। विकल्प का विवेक और अजीव परतत्त्व का विवेक से भिन्न भगवान है, सम्यग्दृष्टि ने पहले अन्तर से स्वीकार किया है। जितना उदयभाव का विकल्प आयेगा, वह मेरी चीज़ नहीं। मुझे उपादेय नहीं। षोडषभावना उपादेय नहीं। ऐसा सम्यग्दृष्टि मानते हैं। हेयरूप है, परन्तु आये बिना रहता नहीं। उसकी योग्यता ऐसी है तो आती है। आहाहा! जगत को कठिन (पड़े)। तत्त्व की सत्यता सुनने में आयी नहीं। पण्डितजी! यह तो सर्वज्ञ पन्थ है। वीतराग त्रिलोकनाथ का पन्थ है। इन्द्र मानते हैं। तीर्थंकर कहते हैं, गणधर स्वीकारते हैं। दो-चार आदमी, पच्चीस-पचास लोग मान ले ऐसी यह चीज़ है? समझ में आया?

कहते हैं, पाँच ज्ञानमय होता है। कौन? वह (होनेवाले) तीर्थंकर सम्यग्दर्शन सहित है, उसकी भावना में पूर्ण शुद्धि करने का भाव है। बीच में विकल्प आया तो उससे होता है, ऐसा नहीं। और वह राग भी जब छेदेगा, तब केवलज्ञान होगा। और केवलज्ञान हुआ तब तीर्थंकर प्रकृति बँधी (थी), उसका पाक-विपाक आयेगा। केवलज्ञान होने के बाद प्रकृति का पाक आता है। तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवें (गुणस्थान में) आता है। नीचे आता ही नहीं। आहाहा! क्या किया तीर्थंकर प्रकृति ने आत्मा को? परपदार्थ आत्मा को क्या करे? स्वभाव में सहायक होता है? बिल्कुल नहीं। विकल्प भी आया था, वह आगे जाकर स्वरूप में स्थिर हुआ, विकल्प छूट गया, प्रकृति रह गयी। जब केवलज्ञान.. वह कहते हैं, पाँच ज्ञानमय हुआ, तब तीर्थंकर प्रकृति बँधी थी, पाक में-उदय आया तेरहवें (गुणस्थान) में। केवलज्ञान हो गया। सेठ!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे को लाभ.. जिसकी उपादान की योग्यता होती है, उसको निमित्त होता है। सब तकरार है। बहुत चर्चा चल गयी है। जिसकी उपादान की योग्यता हो, उसे वाणी निमित्त होती है। वाणी क्या करे? अनन्त बार तीर्थंकर के पास गया है। अनन्त बार दिव्यध्वनि सुनी। अनन्त बार भगवान की पूजा समवसरण में इन्द्र के साथ की। क्या हुआ? मूल चीज़ की क्या दृष्टि है? मूल चीज़ क्या है? अपने स्वआश्रय की क्या चीज़ प्रगट होती है, (उसका) भान नहीं, तो भगवान क्या करे? भगवान तो वहाँ विराजते हैं। क्या?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय। जड़ का उदय-पाक आता है। समवसरण आदि रचा जाता है। केवलज्ञान तो हो गया है। केवलज्ञान में क्या प्रकृति ने मदद की? पाक तो तेरहवें में आया। आहाहा! इसलिए यह गाथा ली है। समझ में आया? ३४६ है। ३४६।

शास्त्र भक्ति। '**ज्ञानगुणं च तत्त्वारि, श्रुतं पूजा**' ऐसा लिखा है। देखो! सम्यक् श्रुत किसको कहते हैं, उसका सम्यग्दृष्टि को विवेक है। चार अनुयोग। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, समझ में आया? कथानुयोग। ये चार किसको कहते हैं? किसका अभ्यास करना? सम्यग्दृष्टि को सब खबर है। वह बात ली है। देखो! वह लेंगे, हों! चार अनुयोग। बाद में चार अनुयोग लेंगे। अभी चार अनुयोग किसको कहना? द्रव्यानुयोग किसको कहना? अभ्यास किसको करना, यह खबर नहीं। तो श्रावक को खबर है, सच्चे श्रावक को।

ज्ञान गुणं च चत्त्वारी, श्रुतं पूजा सदा बुधै।
धर्म ध्यानं च संजुत्तं, श्रुतं पूजा विधीयते॥३४६॥

'**ज्ञान गुणं च चत्त्वारी**' चार अनुयोग। समझ में आया? चार अनुयोग के नाम नहीं आते। सेठ तो ना कहते हैं। ... देखो! ज्ञानगुण का निमित्त शास्त्र क्या है? चार प्रकार के शास्त्र हैं न। '**चत्त्वारी।**' '**श्रुतं पूजा सदा बुधै।**' '**बुधै**' अर्थात् ज्ञानियों को श्रुतपूजा करनी है। श्रुतपूजा अर्थात् भावश्रुत पूजा अन्दर में करनी चाहिए। अन्तर में भावश्रुत दर्शन आश्रय में सम्यग्दर्शन हुआ है तो सम्यक् में स्वसंवेदन करके भावश्रुत की वृद्धि करनी, वह भावश्रुत पूजा है। वह अन्दर में संवर, निर्जरा है। सम्यग्दर्शन सहित। बाह्य द्रव्यश्रुत की पूजा में विकल्प है। शुभराग है। सम्यग्दृष्टि को ऐसा भाव आता है। समझ में आया? '**चत्त्वारी, श्रुतं पूजा सदा बुधै।**'

'**धर्म ध्यानं च संजुत्तं**' भाषा यह ली है। ऐसा नहीं है कि धर्मध्यान सहित ही होना चाहिए। तो धर्मध्यान तो सम्यग्दृष्टि को ही होता है, अज्ञानी को धर्मध्यान होता नहीं। अपना स्वभाव ज्ञायक चिदानन्द परिपूर्ण प्रभु, किसी का कर्ता-हर्ता है नहीं। किसी की सहायता से मेरी दशा प्रगट हो, ऐसा मैं नहीं हूँ। ऐसी अन्तर अनुभव में प्रतीति हुई, ऐसे धर्मध्यान सहित श्रुतपूजा करने का (भाव आता है)। श्रुतपूजा के दो अर्थ है। भावश्रुत, द्रव्यश्रुत।

भावश्रुत चार अनुयोग के अन्दर में सम्यग्ज्ञान प्रगट करना, स्वभाव के आश्रय से एकाकार होकर। द्रव्यश्रुत बाहर है, उसकी भक्ति, वह विकल्प है। अपना स्वभाव भावश्रुत प्रगट करना, वह निर्विकल्प पूजा है। समझ में आया? अकेली पूजा श्रुत की करे और समझे नहीं कुछ। सेठ! करो पूजा। क्या है? वह तो अजीव शास्त्र है। उसकी पूजा में क्या है? करो पूजा, भाई! शास्त्र में भगवान के भाव भरे हैं। नहीं। ऐसा कहते हैं। भगवान की पर्याय भगवान में है, वाणी की पर्याय वाणी में है। वह तो निमित्त से कहने में आया-जिनवाणी। जैसे जिनप्रतिमा है, वैसे जिनवाणी है। वाणी में क्या जिन आ गये हैं? वीतराग का भाव आया है उसमें? वह तो जड़ परमाणु की पर्याय है। उसकी परमाणु की पर्याय में चेतन की पर्याय आयी मानना, ऐसा मिथ्यादृष्टि मानते हैं। समझ में आया? ऐसे भगवान स्थापना निक्षेप है। उसमें भाव अरिहन्त निक्षेप मानना, वह विपरीत मान्यता है। समझ में आया? सेठ! यहाँ तो तोल-तोलकर (बात आती है)। हीरे को तोलकर लेते हैं न? उसके काँटे में थोड़ा भी आगे-पीछे नहीं होना चाहिए।

एक रतिभार... हमारे भाई कहते थे न? बेचरभाई। (संवत) १९९९ के चातुर्मास में हम वहाँ थे। एक हीरा, साठ हजार का एक हीरा.. लाये बताने को। हीरे का व्यापारी है न। कल आये थे न। हीरा का व्यापार है, बड़ा व्यापार है। बेचरभाई लाये थे, एक अस्सी हजार का, एक साठ हजार का। साठ हजार का था, वह छोटा था। .. एक रत्ती का दस हजार रुपया लेते हैं। एक रत्ती का दस हजार। समझे? रत्ती समझते हो? तीन रत्ती का वाल। वह सब चला गया। अभी दूसरी गिनती चलती है। पहले ऐसा था। तीन रति का वाल, सोलह वाल का गदियाणुं। गदियाणुं आधे रुपये का। बत्तीस वाल का एक रुपया। रुपयाभार। एक रुपयाभार बत्तीस वाल होता है। ९६ रति का एक तोला। रति.. रति। ... था न? एक रति का दस हजार रुपया। वह काँटा कैसा होगा? उसे तोलनेवाला काँटा कैसा होगा? काँटा समझे? काँटा कहते हैं? उसका पल्ला है न? पल्ला। ... हमें खबर नहीं। वह जहाँ रहते थे, इतना होता है। ऐसे ऊपर-नीचे नहीं होता। समझ में आया? उसका पल्ला है न? पल्ला। थोड़ा ऊँचा होता है। नीचे धक्का लगे तो फेरफार हो जाए। चार मण चावल का वजन नहीं करना है। पल्ला इतना सूक्ष्म (होता है)। थोड़ा-सा ऊपर-नीचे हो तो तोलमाप हो जाता है। समझ में आया? एक रत्ती का दस हजार रुपया। एक अस्सी

हजार का हीरा था। ... समझ में आया ? छह रत्तीभार हुआ न। साठ हजार का। और दूसरा ... अस्सी हजार का। ...

यह तो सर्वज्ञ वाणी की तुलना (होती है)। हीरा तो धूल है। वीतराग वाणी का ज्ञान तोलना, उसका सम्यग्ज्ञान का काँटा बराबर सूक्ष्म होना चाहिए। समझ में आया ? थोड़ा भी फेर पड़े तो सम्यग्ज्ञान की तुलना यथार्थ कर सके नहीं। भीखाभाई ! ... द्रव्यानुयोग की एकता का लेते हैं। है न द्रव्यानुयोग ? ३५६। यह पहले चल गयी है। ३५६।

द्रव्यानुयोग उत्पाधं, द्रव्यदृष्टि च संजुत्तं।
अनन्तानन्तं दिस्यन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं॥३५६॥

श्रावक सम्यग्दृष्टि को द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना। समझ में आया ? चार अनुयोग का अभ्यास। तीन का आ गया है। द्रव्यानुयोग में सार ... कहते हैं। द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। उसका अर्थ यह। द्रव्यानुयोग अन्दर में स्वभाव में उत्पन्न करना। और बाह्य में द्रव्यानुयोग शास्त्र का अभ्यास करना। द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना। द्रव्यानुयोग किसको कहते हैं ? समझे ?

जिसमें आत्मा का वर्णन हो, द्रव्य का वर्णन हो, गुण-पर्याय का वर्णन हो, उसके अस्तित्व का वर्णन हो, जिसमें अभेद, भेद क्या चीज़ है उसका वर्णन हो। '**द्रव्यानुयोग उत्पादन्ते।**' उसका अभ्यास श्रावकों को हमेशा करना। वह शास्त्र भक्ति में, शास्त्र कर्तव्य में हमेशा विकल्प आता है। निश्चय में अन्तर में द्रव्यानुयोग की शुद्धि प्रगट करना। बाहर में ऐसा विकल्प श्रुतभक्ति का, श्रुतवांचन का हमेशा द्रव्यानुयोग का अभ्यास (होता है)। यहाँ तो अभी द्रव्यानुयोग किसको कहना खबर नहीं, तो अर्थ कैसा करना, वह खबर ही नहीं है।

सम्यग्दृष्टि होकर '**द्रव्यदृष्टि संजुत्तं।**' साथ में द्रव्यार्थिकनय से शुद्ध आत्मा की दृष्टि भी प्राप्त करनी चाहिए। अकेले द्रव्यानुयोग का अभ्यास नहीं। समझ में आया ? ... पैसे का। सेठी ! पैसे का ... एक साधु कहता था कि सब वीतरागस्वभावी। सामनेवाले ने कहा, हम वीतरागी कैसे ? उसने कहा, आप सब वीतराग हो। हम वीतराग कैसे ? उसे ऐसा लगा कि, कोई आत्मा के लिये कहते होंगे। वीतराग मालूम नहीं ? वित्त अर्थात् पैसा, राग अर्थात्

पैसे का प्रेमी। पैसे को वित्त कहते हैं न? वित्त। वित्त-पैसा। वीतराग है सब। वित्त अर्थात् पैसे का प्रेमी। ऐसे विपरीत अर्थ करते हैं। ... तत्त्व की खबर नहीं। आत्मा वीतरागी है। आत्मा का स्वभाव वीतराग ही है। उसका तो भान नहीं और यह वीतराग लगा दिया। आप सब वीतरागी हो। पैसे का प्रेमी। अरे..! कहो, समझ में आया?

'**द्रव्यदृष्टि संजुत्तं।**' सम्यग्दृष्टि द्रव्यदृष्टि है। द्रव्य अपना कैसा है, द्रव्यार्थिकनय से अपनी दृष्टि करके, जो दृष्टि लगायी है, उसका बारम्बार अपने स्वभाव सन्मुख में अभ्यास करना। समझ में आया? '**अनन्तानन्तं दिष्टंते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं**' अपने शुद्ध आत्मा के समान जगत के अनन्तानन्त आत्मा .. सब द्रव्य शुद्ध है। जैसा मेरा आत्मा शुद्ध है, ऐसे सब आत्मा शुद्ध दृष्टि में आता है। अपनी पर्यायबुद्धि निकल गयी। सब आत्मा द्रव्य से शुद्ध है, ऐसा सबको दृष्टि से देखते हैं। पर्याय अशुद्ध है तो उसके (पास रही)। समझ में आया? '**अनन्तानन्तं दिष्टंते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं।**' उसका अर्थ वह किया। बाकी अपने आत्मा को अनन्त-अनन्त गुणवाला प्रगट है, ऐसा अन्तर दृष्टि में देखते हैं। ऐसा लेना। समझ में आया?

यहाँ '**स्वात्मा**' शब्द पड़ा है न? '**अनन्तानन्तं दिष्टंते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं।**' अपना आत्मा अनन्तानन्त गुण से भरा प्रगट ही है। व्यक्त अर्थात् प्रगट ही है। कोई गुप्त नहीं है। समझ में आया? एक समय में अनन्तानन्त। वह कहा था न? अनन्त गुणा गुण। ऐसे अनन्तानन्त गुण अपने आत्मा में प्रगट ही पड़े हैं। ऐसे स्वात्मा को द्रव्यानुयोग अर्थात् अन्तर्मुख होकर अभ्यास करना, उसका नाम सम्यग्दृष्टि का श्रावकाचार कहने में आता है। कहो, समझ में आया? ३९२॥

दर्शनं यस्य हृदये शुद्धं, दोषं तस्य न पश्यते।
विनाशं सकलं जानंते, स्वप्नं तस्य न दिष्टंते॥३९२॥

देखो! क्या कहते हैं? जिसके हृदय में सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभव हुआ है, प्रतीत, अनुभव, भान हुआ, शुद्ध है। उसके भीतर कोई दोष नहीं दिखलाई पड़ता है। पहले वह शब्द आया था। '**दोषं न पश्यते।**' दोष दृष्टि में नहीं दिखते, दृष्टि में द्रव्य दिखता है। दोष जो रागादि होते हैं, ज्ञानी उसका ज्ञाता-दृष्टा है। समझ में आया?

उसके भीतर कोई दोष नहीं दिखलाई (देता है)। अकेला आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्य की दृष्टि है, पूर्णानन्द ज्ञान दिखता है।

'**विनाशं सकलं जानंते**' सर्व जगत की धन, वस्त्रादिक परिणति, परिग्रह को विनाशीक जानते हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक अपने नित्य आत्मा को अनुभव में जानते हैं और सब पदार्थ, जगत का धन, वस्त्र, महल, मकान, इज्जत, कीर्ति विनाशीक मानते हैं। सब नाशवान है, नाशवान है। मेरा आत्मा त्रिकाल आनन्द ध्रुव एक अविनाशी है। ऐसे सम्यग्दृष्टि श्रावक आचार कहने में (आता है)। लो, यह आचार। '**स्वप्नं तस्य न दिष्टंते।**' स्वप्न में भी नाशवान वस्तु का राग पैदा नहीं होता। सपने में भी राग मेरा है, देह की क्रिया मेरी है, ऐसा सम्यग्दृष्टि को होता नहीं। सपने में नहीं आता। सपना ऐसा नहीं है। आहाहा! राग का कण उत्पन्न होता है, वह मेरा नहीं, नाशवान है। देहादि पदार्थ नाशवान है। '**स्वप्नं तस्य न दिष्टंते।**' सपने में भी पर को अपना जानते नहीं। समझ में आया? ३९९ देखो।

अनेक पाठ पठनं च, अनेक क्रिया संजुत्तं।
दर्शनंशुद्ध न जानंते, वृथा दान अनेकधा॥३९९॥

यह तो कैसे अर्थ करना, कैसे समझना, वह भी साथ में आता है। समझ में आया? '**अनेक पाठ पठनं।**' अनेक पाठों का पढ़ना। शास्त्र का, हों! दूसरे की बात (नहीं है)। दूसरा सब तो कुज्ञान है। शास्त्र के अनेक पाठ पढ़ना और अनेक प्रकार से व्यवहारचारित्र का पालना। दया, दान, भक्ति, व्रत, ब्रह्मचर्य सब पालना और अनेक प्रकार का दान देना। अनेक प्रकार मुनियों को दान, करुणावन्त को दान, पण्डित को दान, ऐसा सब आता है न? निरर्थक है। किसको? यदि शुद्ध सम्यग्दर्शन अनुभव नहीं किया जाए। अपनी दृष्टि स्वभाव सन्मुख (करके) सम्यग्दर्शन न हो, अपनी दृष्टि सुधारी नहीं, उसकी सब क्रिया वृथा फोगट है। पढ़ा-लिखा व्यर्थ है, क्रियाकाण्ड व्यर्थ है, उसका दान (व्यर्थ है)। कहो, सेठी! ओहो! ४००।

दर्शनं यस्य हृदि दृष्टं, सुयं ज्ञान उत्पाद्यते।
कमठी दृष्टि जथा अंडं, स्वयं वर्धंति यं बुधैः॥४००॥

यह गाथा पहले अपने आ गयी है। आठ व्याख्यान में आ गयी है। जिसके मन में

सम्यग्दर्शन विद्यमान है। अपने स्वभाव की दृष्टि, राग-विभाव से भिन्न, ऐसा प्रथम धर्म प्रगट हुआ है, वहाँ ही श्रुतज्ञान बढ़ता जाता है। वहाँ सम्यग्ज्ञान बढ़ता जाता है। सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान बढ़ता है नहीं। वहाँ ज्ञान है नहीं तो बढ़े कहाँ से ?

'**सुयं ज्ञान उत्पाद्यते**' है न ? '**कमठी दृष्टि जथा डिंभं, सुयं व्रिद्धन्ति।**' जैसे ...की दृष्टि से, काचबा, काचबा होता है या नहीं ? कछुआ। ... उसी तरह बुद्धिमानों को ... ज्ञान बढ़ता जाता है। कछुआ ... दृष्टि देता है। कछुआ की ऐसी प्रकृति है कि ... कछुआ का निरन्तर ध्यान ... की तरफ रहता है। ऐसे धर्मी की दृष्टि बारम्बार द्रव्यस्वभाव पर पड़ती है। वस्तु... वस्तु... वस्तु.. वस्तु... वस्तु। उसकी दृष्टि यहाँ (है) तो उसका ज्ञान बढ़ता ही जाता है। कछुआ की .... उसकी दृष्टि वहाँ हमेशा रहे तो बढ़ती जाती है। ऐसे सम्यग्दृष्टि की दृष्टि द्रव्य पर है, तो सम्यक् श्रुतज्ञान बढ़ता ही जाता है। बिना पढ़े बढ़ता जाता है, ऐसा कहते हैं। सेठी ! उसका नाम दर्शनशुद्धि कहने में आता है। हो गया...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)